अध्याय–4

नेहरू की वैचारिक विरासत एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण

पण्डित जवाहर लाल नेहरू विलक्षण एवं बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। उच्च शिक्षित राजनेता, प्रखर वक्ता, लेखक, लोकतांत्रिक संस्थाओं और परंपराओं के प्रति अटूट विश्वास तथा उदारवादी सिद्धांतो के पोषक होने के कारण उन्हें समकालीन विश्व में अंतरराष्ट्रीय पहचान मिली। लगभग दो सदी के औपनिवेशिक शासन और शोषण के पश्चात आजाद हुए देश को एक ऐसे नेतृत्व की आवश्यकता थी जो भारत को एक नयी दिशा दे सके एवं विकास का मार्ग प्रशस्त कर सके। ऐसे समय में आजाद भारत के प्रथम प्रधानमंत्री के रूप में नेहरू ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। इसीलिए वे आधुनिक भारत के निर्माता के रूप में प्रतिष्ठित हुए। उनके द्वारा विभिन्न अवसरों पर दिये गये सम्बोधनों, महात्मा गाँधी एवं अन्य महापुरूषों तथा अपनी पुत्री इन्दिरा को लिखे गये पत्रों, पुस्तक डिस्कवरी ऑफ इण्डिया तथा आत्मकथा में अन्तर्राष्ट्रीय जगत, भारत के भूगोल एवं इतिहास, प्राकृतिक संसाधनों के बारे में विस्तृत विवरण मिलता हैं। उन्होंने इतिहास, विज्ञान, धर्म, समाज, अर्थव्यवस्था तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर अपने विचार खुलकर प्रकट किये। आप पायेंगे कि उनका प्रगतिशील वैज्ञानिक दृष्टिकोण उनकी कृतियों और वक्तव्यों से स्पष्ट होता है तथा सुदृढ़ भारत के भविष्य के लिए उनके विचार स्पष्ट, तार्किक और अर्थपूर्ण थे। उनके द्वारा अपने कार्यकाल में लिये गये निर्णयों से यह भी स्पष्ट होता है कि उन्होंने अपने विचारों को व्यावहारिक रुप दिया।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण–

एक सशक्त भारत के निर्माण के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण का होना अत्यंत आवश्यक था। नेहरू का विश्वास था कि भारत की समस्याओं के समाधान के लिए विज्ञान और तकनीक का विकास अति महत्त्वपूर्ण हैं। जनवरी, 1938 में भारतीय विज्ञान कांग्रेस को दिए गए अपने संदेश में उन्होंने कहा कि सिर्फ विज्ञान ही अकेले भूख, गरीबी और अशिक्षा, अंधविश्वास, मृत हो रही परम्परा एवं रीति–रिवाजों तथा संसाधनों को भारी बर्बादी से बचा सकता हैं। मार्च, 1958 में लोकसभा द्वारा पारित किए गए वैज्ञानिक नीति प्रस्ताव में यही विचार दोहराया गया। इसमें देश के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास में विज्ञान और तकनीक की

नेहरु की नौसैनिक पोत से विहंगम दृष्टि

भूमिका को स्वीकार किया गया हैं।

उनका मानना था कि किसी व्यक्ति में वैज्ञानिक दृष्टिकोण किसी एक सच की तलाश में सीमित न होकर उसकी आन्तरिक सोच और क्रियाकलापों में परिलक्षित होनी चाहिए। किसी परंपरा पर सिर्फ इसलिए विश्वास नहीं करना चाहिए कि वह सदियों से चली आ रही हैं बल्कि उसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अवश्य परखा जाना चाहिए तथा इस वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास में वैज्ञानिकों को महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के सम्बन्ध में नेहरू के ये विचार समय के साथ आज और भी मजबूत होकर उभरे हैं।

नेहरू विज्ञान के प्रयोग से होने वाले सामाजिक परिवर्तनों के प्रति अत्यधिक आशान्वित थे। भारतीय विज्ञान कांग्रेस के 47वें अधिवेशन में उनके उद्‌बोधन से भी यह स्पष्ट होता हैं। इस अवसर पर उन्होंने कहा कि विज्ञान में मेरी रूचि इसके प्रयोग से होने वाले सामाजिक परिवर्तनों से भी हैं। एक विकासशील देश के रूप में हमें राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा। इन समस्याओं का समाधान विज्ञान का प्रयोग किए बिना संभव नहीं हो पायेगा, उन्होंने कहा कि इतिहास यात्रा में जितना विज्ञान ने मानव जीवन को प्रभावित किया हैं उतना किसी और चीज ने नहीं किया हैं तथा विज्ञान को किसी देश की सीमाओं में नहीं बांधा जा सकता। विज्ञान किसी एक देश का न होकर पूरे विश्व के जनकल्याण के लिए हैं।

पण्डित नेहरू ने धर्म को भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया। उनका विचार था कि धर्म ने निस्संदेह मानवता के विकास में योगदान दिया हैं लेकिन धर्म ने मानव की जिज्ञासा तथा प्रश्नों को भी सीमित कर दिया हैं। धर्म में अलौकिक शक्तियों के सिद्धांत से वे ज्यादा प्रभावित नहीं थे। उनका मत था कि इन पर मनुष्य का ज्यादा विश्वास उसकी आत्मनिर्भरता और उसकी रचनात्मक योग्यता पर विपरीत प्रभाव डालता हैं। उनके अनुसार विज्ञान की प्रगति से जीवन प्रक्रिया और प्रकृति को समझना ज्यादा आसान हैं। जैसे–जैसे ज्ञान बढ़ता हैं धर्म में संकीर्णता का दायरा कम होने लगता हैं। एक समय था जब हमारे उपयोग में आने वाले कृषि, भोजन, कपड़े तथा सामाजिक सम्बन्ध धर्म से प्रभावित थे लेकिन समय के साथ–साथ ये वैज्ञानिक अध्ययन के दायरे में आ गये।

नेहरु महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्सटाइन के साथ

नेहरू के विचारों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण एक जीवन जीने का तरीका हैं। आज विज्ञान का प्रयोग समस्त देशों और उनके निवासियों के लिए अपरिहार्य हैं। उनका यह भी कहना था कि विज्ञान सिर्फ ज्ञान की खोज करता हैं लेकिन समाज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण इस खोज को और आगे ले जाता है। सन 1948 ई. में नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ साइन्स की आधारशिला रखते हुए उन्होंने कहा कि जीवन की समस्याओं के समाधान के लिये वैज्ञानिक पद्धतियों को अपनाया जाना सबसे उचित मार्ग हैं। इसी मार्ग को अपनाकर हम मानव जीवन और संस्थाओं का विकास कर पाऐंगे। हम किसी मानव को वैज्ञानिक पद्धतियों को अपनाकर ही सही रास्ते पर चलने के लिए प्रेरित कर

सकते हैं। भारतीय विज्ञान कांग्रेस के सन 1955 के अधिवेशन को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा कि मैं अपनी गलतियों को स्वीकारता हूँ। ऐसा करना वैज्ञानिक दृष्टिकोण के पालन करने के नजदीक हैं और एक वैज्ञानिक न होते हुए भी मुझ में वैज्ञानिक स्वभाव दृष्टिगोचर होता हैं। आने वाले समय में भारत में तकनीकी और विभिन्न शोध संस्थाओं की स्थापना, परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम तथा अंतरिक्ष कार्यक्रम ये दर्शाते हैं कि नेहरू के वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सम्बन्धित विचार व्यवहार में भी परिणित हुए।

नेहरू के प्रधानमंत्री काल में देश के लिए अत्यंत आवश्यक तकनीकी व्यक्तियों के प्रशिक्षण को संगठित करने के कदम तुरंत उठाए गए। सन 1952 ई0 में पाँच में से पहला आई.आई.टी. जो अमरीका के एम.आई.टी. (मैसेचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलोजी) के प्रारूप पर विकसित किया जाने वाला था, की स्थापना खड़गपुर में की गई। बाद में अन्य चार आई.आई.टी मद्रास, बंबई, कानपुर और दिल्ली में स्थापित किए गए। विज्ञान की समाज कल्याण में भूमिका को दृष्टिगत रखते हुए विज्ञान पर आधारित गतिविधियों और वैज्ञानिक अनुसंधानों के लिए बजट में निरंतर वृद्धि की गई। इन गतिविधियों पर होने वाला व्यय 1948–49 के 1.10 करोड़ रूपए से बढ़ कर 1965–66 ई0 में 85.06 करोड़ हो गया। इसके फलस्वरूप वैज्ञानिकों और तकनीशियनों की संख्या 1,88,000 (1950) से बढ़ कर 7,31,500 (1965) हो गई। साथ ही, इंजीनियरिंग और तकनीकी कॉलेजों में छात्रों की संख्या 1950 ई0 के 13,000 से बढ़ कर 1965 में 78,000 हो गई। इसी प्रकार कृषि महाविद्यालयों में पढ़ने वाले छात्रों की संख्या 1950 ई0 के 2,600 से बढ़ कर 1965 में 14,900 हो गयी।

परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम–

भारत परमाणु ऊर्जा के महत्व को समझने वाले अग्रणी देशों में रहा हैं। नेहरू समझते थे कि परमाणु ऊर्जा दुनिया के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन में एक क्रांति लायेगी, साथ ही यह एक देश की सुरक्षा क्षमता पर भी प्रभाव डालेगी। सन 1948 के आरंभ में उन्होंने लिखा : "भविष्य उनका होगा जो परमाणु ऊर्जा पैदा कर सकेंगे। यह भविष्य का सर्वप्रमुख ऊर्जा स्रोत बनने जा रहा हैं। स्वाभाविक रूप से सैनिक सुरक्षा भी इससे जुड़ी हुई हैं।"

अगस्त, 1948 में भारत सरकार ने परमाणु ऊर्जा आयोग की स्थापना की, जिसका अध्यक्ष भारत के अग्रणी परमाणु वैज्ञानिक डॉ. होमी जहाँगीर भाभा को बनाया गया। शांतिपूर्ण ऊर्जा विकसित करने के लिए यह आयोग वैज्ञानिक अनुसंधान विभाग के तहत बनाया गया, जो सीधे प्रधानमंत्री नेहरू के निर्देशन में काम करता था। सन 1954 ई. में सरकार ने सीधा प्रधानमंत्री के नेतृत्व में एक अलग परमाणु विभाग गठित किया, जिसके सचिव डॉ. होमी जहाँगीर भाभा बनाए गए। भारत के पहले परमाणु रिएक्टर अप्सरा, जो एशिया का भी पहला रियेक्टर था, ने बंबई में अगस्त, 1956 में काम करना शुरू कर दिया। भारत के अत्याधुनिक और अतिविकसित परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम के तहत स्थापित परमाणु ऊर्जा संयंत्रो ने कुछ ही वर्षों में विद्युत का उत्पादन भी प्रारम्भ कर दिया। हालांकि भारत परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण प्रयोग के प्रति समर्पित था, परंतु इस क्षमता का उपयोग आसानी से परमाणु बम बनाने के लिए भी किया जा सकता था। आने वाले समय में भारत ने यह कार्य किया तथा आज भारत विश्व का एक प्रमुख परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र हैं।

अंतरिक्ष अनुसंधान–

भारतीय अन्तरिक्ष कार्यक्रम डॉ विक्रम साराभाई की संकल्पना है, जिन्हें भारतीय अन्तरिक्ष कार्यक्रम का जनक कहा गया हैं। वे वैज्ञानिक कल्पना एवं राष्ट्रनायक के रूप में जाने जाते हैं। सन 1957 ई में स्पूतनिक के प्रक्षेपण के बाद, उन्होंने कृत्रिम उपग्रहों की उपयोगिता को भाँपा। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू, जिन्होंने भारत के भविष्य में वैज्ञानिक विकास को अहम माना, सन 1961 ई. में अंतरिक्ष अनुसंधान को

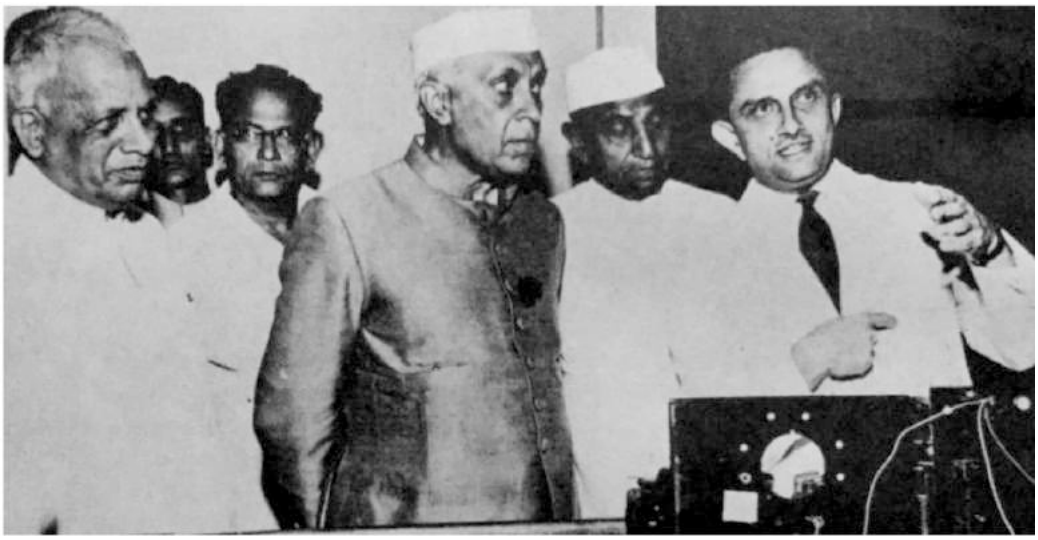

नेहरु प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. विकम साराभाई के साथ

परमाणु ऊर्जा विभाग की देखरेख में रखा। परमाणु उर्जा विभाग के निदेशक डॉ. होमी जहाँगीर भाभा ने सन 1962 ई. में 'अंतरिक्ष अनुसंधान के लिए भारतीय राष्ट्रीय समिति' (इनकोस्पार) का गठन किया, जिसमें सभापति डॉ॰ साराभाई को बनाया गया।

भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम ने देशी तकनीक की आवश्यकता, कच्चे माल एवं तकनीक आपूर्ति में भावी अस्थिरता की संभावना को भाँपते हुए, प्रत्येक माल आपूर्ति मार्ग, प्रक्रिया एवं तकनीक को अपने अधिकार में लाने का प्रयत्न किया। जैसे–जैसे भारतीय रोहिणी उपग्रह कार्यक्रम ने और अधिक संकुल एवं वृहताकार रॉकेट का प्रक्षेपण जारी रखा, अंतरिक्ष कार्यक्रम बढ़ता गया और इसे परमाणु उर्जा विभाग से अलग कर, स्वतंत्र सरकारी विभाग बना दिया गया। सन 1969 ई0 में भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन का गठन तथा जून, 1972 में अंतरिक्ष विभाग की स्थापना की गई।

डॉ॰ साराभाई ने टेलीविजन के सीधे प्रसारण जैसे बहुल अनुप्रयोगों के लिए प्रयोग में लाए जाने वाले कृत्रिम उपग्रहों की सम्भावना के सन्दर्भ में नासा के साथ प्रारंभिक अध्ययन में हिस्सा लिया और अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि प्रसारण के लिए यही सबसे सस्ता और सरल साधन हैं। प्रारम्भ से ही, उपग्रहों को अंतरिक्ष में स्थापित करने के लिए साराभाई और इसरो ने मिलकर एक स्वतंत्र प्रक्षेपण वाहन का निर्माण किया। यह प्रक्षेपण वाहन कृत्रिम उपग्रहों को कक्ष में स्थापित करने एवं भविष्य में वृहत प्रक्षेपण वाहनों में निर्माण के लिए आवश्यक अभ्यास उपलब्ध कराने में सक्षम था। रोहिणी श्रेणी के साथ ठोस मोटर बनाने में भारत की क्षमता को परखते हुए, अन्य देशो ने भी समांतर कार्यक्रमों के लिए ठोस रॉकेट का उपयोग बेहतर समझा। इसरो ने कृत्रिम उपग्रह प्रक्षेपण वाहन (एस.एल.वी.) की आधारभूत संरचना एवं तकनीक का निर्माण प्रारम्भ कर दिया। अमेरिका के स्काउट रॉकेट से प्रभावित होकर, वाहन को चतुर्स्तरीय ठोस वाहन का रूप दिया गया।

आजादी प्राप्ति के पश्चात् के दो दशकों में भारत में अंतरिक्ष कार्यक्रम के क्षेत्र में हुई प्रगति से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता हैं कि जिस देश को स्वतंत्र हुए कुछ समय ही बीता हो उसे नीति नियंताओं एवं युग दृष्टाओं के रूप में ऐसे व्यक्तित्वों का योगदान मिला जिन्होंने उच्च कोटि के अंतरिक्ष अनुसंधान में सहयोग किया और आज भारत को विश्व के चुनिंदा देशों की पंक्ति में ला खड़ा किया जिसकी बदौलत आज भारत भू–स्थिर कक्षा में GSLV, मंगलयान तथा चन्द्रयान जैसे अत्याधुनिक अभियान करने में सक्षम हुआ हैं।

निस्संदेह सामाजिक एवं धार्मिक विषमताओं से परे विज्ञान के क्षेत्र में यह प्रगति अभूतपूर्व थी तथा नेहरू के वैज्ञानिक दृष्टिकोण के धरातल पर साकार होने का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण थी।

लोकतंत्र सम्बन्धी विचार–

पण्डित जवाहर लाल नेहरू भारत के प्रथम प्रधानमंत्री के साथ–साथ वह व्यक्ति थे जिन्होंने इस विविधता से परिपूर्ण देश में लोकतंत्र के बीज बोए। उनका मत था कि भारत में धर्म, जाति, प्रजाति, तथा लिंग पर आधारित भेदभाव की कोई जगह नहीं होनी चाहिए। आजादी के पूर्व तथा उसके बाद के उनके विभिन्न सम्बोधनों में व्यक्त किए गए लोकतंत्र सम्बन्धी विचारों की छाया हम भारतीय संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकारों एवं अन्य प्रावधानों में सहज ही देख सकते हैं। उनके सम्बोधनों में सामाजिक एवं आर्थिक न्याय, विधि के समक्ष समानता, अवसरों की समानता, विचारों को प्रकट करने की स्वतंत्रता तथा धार्मिक विश्वासों को मानने की स्वतंत्रता सम्बन्धी बातें प्रायः देखी जाती हैं।

प्रजातंत्र के सम्बंध में उनका मत था कि 'जो लोग ऊपरी चोटी पर हैं और जो लोग नीचे जमीन पर हैं– उनके बीच बहुत बड़ी खाई हैं। अगर हम प्रजातंत्र लाना चाहते हैं, तो यह अनिवार्य हो जाता हैं कि इस खाई को पार किया जाए। वास्तव में, जहाँ तक अवसरों का सम्बन्ध हैं, जहाँ तक रहन–सहन की स्थिति का सम्बन्ध हैं–और जहाँ तक जीवन की आवश्यकताओं का सम्बन्ध हैं– उन्हें अधिक से अधिक नजदीक लाया जाए।' इस मत से स्पष्ट होता हैं कि वे प्रजातांत्रिक मूल्यों में आमजन में अवसरों की समानता को अत्यधिक महत्व देते थे।

नेहरू राजनीतिक लोकतंत्र के साथ–साथ आर्थिक लोकतंत्र के पक्षधर थे। उनके अनुसार इसके बिना देश का उचित आर्थिक विकास संभव नहीं हैं। 25 फरवरी, 1956 को संसदीय लोकतंत्र विषय पर आयोजित सेमीनार के अवसर पर उन्होंने कहा कि ''भूतकाल में लोकतंत्र का अर्थ मुख्य रूप से राजनीतिक लोकतंत्र के रूप में ही देखा जाता रहा हैं जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने मताधिकार का प्रयोग करता हैं, लेकिन एक ऐसे व्यक्ति के लिए उस मताधिकार के कोई मायने नहीं हैं यदि वह आर्थिक रूप से पिछड़ा और भूखा हैं।''

पंडित नेहरू का लोकतंत्र सहभागिता के सिद्धांत पर आधारित था जिसमें सत्ता का विकेन्द्रीकरण एक महत्त्वपूर्ण अंग था। इसे साकार करने के लिए सन 1952 ई0 में उन्होंने सामुदायिक विकास कार्यक्रम की शुरूआत की तथा बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति गठित की जिसने नवंबर, 1957 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जो त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था की स्थापना का आधार बनी।

नेहरु 2 अक्टूबर, 1959 को पंचायती राज की स्थापना के अवसर पर नागौर, राजस्थान में

उल्लेखनीय हैं कि 2 अक्टूबर, 1959 को राजस्थान के नागौर जिले में त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था की नींव रखी गयी। इस अवसर पर श्री नेहरू ने अपने सम्बोधन में कहा कि ''लोकतंत्र की जड़ें भारत के लिए अनजानी नहीं हैं, यह हमारी प्राचीन पंचायत व्यवस्था में भी दृष्टिगोचर होती हैं। जैसे राजनीतिक व्यवस्था में सभी मत देने के अधिकारी हैं, आर्थिक मामलों में सबके पास समान अवसर हैं वैसे ही प्रत्येक पंचायत में सभी समान होंगे तथा महिला एवं पुरूष में कोई भेदभाव नहीं किया जायेगा।''

पंडित नेहरू को भारत में सही अर्थों में लोकतंत्र की स्थापना का श्रेय जाता हैं। उनके द्वारा लोकतंत्र के ऐसे बीजों का रोपण किया गया जिनका लाभ आज की पीढ़ी उठा रही हैं। लोकतंत्र की स्थापना में उनके योगदान का मूल्यांकन करने के लिए आवश्यक हैं कि हम 20वीं शताब्दी में औपनिवेशिक सत्ता से स्वतंत्र हुए विश्व के विभिन्न देशों की वर्तमान व्यवस्था का मूल्यांकन करें। हम पाते हैं कि जहाँ अधिकांश देश अपनी आंतरिक समस्याओं से ग्रस्त हैं तथा वे सही अर्थों में लोकतंत्र की स्थापना नहीं कर पाये, वहीं भारत आज नेहरू की बदौलत ही विश्व का विशालतम सफल लोकतंत्र हैं।

नेहरु की आर्थिक दृष्टि : लोकतांत्रिक समाजवाद–

भारत में व्याप्त सामाजिक–आर्थिक असमानता के समापन व पूँजीवादी दोषों के निराकरण हेतु नेहरू ने भारत में समाजवादी समाज की स्थापना पर बल दिया। पण्डित नेहरू ने प्रारम्भ में ही यह समझ लिया था कि बिना समाजवाद लाए भारतीय अर्थव्यवस्था में निहित दोषों को दूर नहीं किया जा सकता। पण्डित नेहरू के समाजवादी विचार उनकी पुस्तक 'विदर इंडिया' (Whither India) में मिलते हैं। सन 1927 ई0 की रुस यात्रा में नेहरू को समाजवादी विचारधारा ने अत्यधिक प्रभावित किया। उनके लिये समाजवाद का अर्थ समानता से था। लेकिन नेहरू अच्छी तरह जानते थे कि एकदम से पूँजीवाद को नष्ट कर समाजवाद नहीं लाया जा सकता। अतः इसके लिये उन्होंने कठोर उपायों का सहारा न अपनाकर उदार तरीके अपनाने पर बल दिया।

15 दिसम्बर, 1952 को लोकसभा में उद्‌बोधन देते हुए पण्डित नेहरू ने स्पष्ट शब्दों में कहा ''हमें अपने देश को संघर्ष से अपने लक्ष्यों की ओर बढ़ाने का विचार नहीं करना चाहिए। हमारी बहुत सी चीजें शांतिपूर्ण तरीके से ही हासिल हुई हैं और मुझे ऐसा कोई कारण नहीं दिखाई देता हैं कि हम इस तरीके को छोडकर हिंसा का तरीका अपना लें। मुझे पूरा यकीन हैं कि अगर हमने हिंसात्मक तरीके से अपने उद्‌देश्यों और लक्ष्यों को, जो भले ही कितने ऊँचे हों, प्राप्त करने की कोशिश की तो हमें बहुत देर लगेगी और उल्टा हम उन्हीं बुराइयों को बढावा देंगे जिनसे हम लड़ रहे हैं। हिन्दुस्तान एक बडा देश ही नहीं हैं बल्कि यहाँ बहुत सी विविधता एवं अनेकता भी हैं। अगर यहाँ किसी ने तलवार उठाई तो यह लाजमी हैं कि कोई दूसरा तलवार लेकर उसका मुकाबला करने उठ खड़ा होगा। तलवार का इस तरह का टकराव नीचे गिरकर एक निरुद्‌देश्य हिंसा में बदल जायेगा। इससे राष्ट्र की जो सीमित शक्तियाँ हैं, वे या तो बहुत बँट जायेगी या फिर बहुत दुर्बल होती जायेंगी।''

पण्डित नेहरू ने लोकतांत्रिक मार्ग को इस संदर्भ में प्रतिष्ठित करते हुए कहा कि ''शान्तिपूर्ण तरक्की ही अंततः लोकतांत्रिक प्रगति का रास्ता हैं। अंतिम लक्ष्य आर्थिक लोकतंत्र हैं, जिसमें कि गरीब और अमीर का भेद और उन लोगो का अंतर खत्म हो जिनमें से कुछ के पास अवसर हैं और दूसरे वे जिनके पास किसी तरह के अवसर नहीं हैं या बहुत थोड़े हैं। इस लक्ष्य के रास्ते की हर रुकावट को हटा देना होगा, भले ही यह काम दोस्ती और सहकार के जरिये हो या चाहे कानून और सरकार के जोर से हो।

नेहरू ने समाजवाद को भारतीय सामाजिक, आर्थिक समस्याओं का एकमात्र उपाय बताया। समाजवाद सभी प्रकार के शोषण से मुक्ति का मार्ग हैं। नेहरू ने कहा 'मुझे विश्वास हैं कि भारत की समस्याओं का

समाधान समाजवाद में हैं और जब मैं इस शब्द को प्रयोग करता हूँ तो मैं इसे केवल अस्पष्ट और मानववादी के रूप में नहीं अपितु वैज्ञानिक और आर्थिक दृष्टि से देखता हूँ। समाजवाद एक आर्थिक सिद्धान्त के अतिरिक्त भी और कुछ हैं। यह एक जीवन का दर्शन हैं और इसी कारण मुझे प्रिय हैं। मुझे गरीबी, बेरोजगारी और भारतीय लोगों की दुर्दशा को समाप्त करने के लिये समाजवाद के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग दिखाई नहीं पड़ता।''

पण्डित नेहरू ने समाजवाद की व्याख्या भारतीय संदर्भ में विशिष्ट प्रकार से की। उन्होंने समाजवाद का अन्धानुकरण नहीं किया अपितु देश में परिस्थितियों के अनुसार ही समाजवाद के स्वरुप की बात कही। सन 1929 ई0 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में अध्यक्षीय भाषण में नेहरू ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि हमें यह महसूस करना चाहिए कि समाजवाद का दर्शन सारी दुनिया के समाज की संरचना में धीरे–धीरे व्याप्त हो गया हैं। विवाद के केवल दो ही बिन्दु हैं, एक शान्ति और दूसरा इसे पूर्ण प्रभावी बनाए जाने हेतु अपनाए जाने वाली विधि। भारत को भी गरीबी और असमानता को समाप्त करने के लिए समाजवाद को अपनाना होगा। हम भारतीय सन्दर्भ में इसे अपने तरीके से बुद्धिमतापूर्ण रुप में अपना सकते हैं। हमारा आर्थिक कार्यक्रम मानवीय दृष्टिकोण पर आधारित होना चाहिए तथा धन की कीमत पर व्यक्ति का बलिदान नहीं करना चाहिए। यदि एक उद्योग श्रमिकों की भूख मिटाये बिना नहीं चल सकता तो उसे बन्द कर देना चाहिए। इस प्रकार जहाँ नेहरू एक ओर लोकतंत्र के प्रबल समर्थक थे वहीं दूसरी ओर उन्होंने समाजवाद की स्थापना पर बल दिया। इस लोकतांत्रिक समाजवाद के प्रति नेहरू आजीवन समर्पित रहे। उनके अनुसार आर्थिक लोकतंत्र के बिना राजनीतिक लोकतंत्र निरर्थक हैं तथा राजनीतिक लोकतंत्र ही समाजवाद का माध्यम बन सकता हैं।

इस धारणा को स्पष्ट करते हुए नेहरु ने कहा कि इस व्यवस्था में पूँजी और अन्य आर्थिक संसाधन पूँजीपति वर्ग के हाथों में केन्द्रित नहीं होंगे वरन यह व्यवस्था की जायेगी कि देश की वास्तविक पूँजी और साधनों पर जनता का प्रभावी नियंत्रण हो। लोकतांत्रिक समाजवाद की अवधारणा में उन्होंने जनता के राजनीतिक अधिकारों की मान्यता, आर्थिक और सामाजिक न्याय, संसाधनों के केन्द्रीकरण का निषेध तथा उत्पादन व वितरण की न्याय प्रणाली को सुनिश्चित किए जाने पर बल दिया। उन्होंने लोकतांत्रिक समाजवाद को भारत के स्वर्णिम भविष्य की आधारशिला माना।

पंथनिरपेक्षता सम्बंधी विचार–

नेहरू भारतीय पंथनिरपेक्षतावाद के वास्तविक प्रणेता थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले तथा बाद में वे ही पंथनिरपेक्ष विचारधारा के महानतम प्रतिपादक हुए हैं। अमेरिकी राजदूत चेस्टर बाउल्स को स्वयं नेहरू ने कहा था कि यदि वह आज भी मर जायें तो इस पंथनिरपेक्ष राज्य का निर्माण उनकी (नेहरू की) सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि मानी जायेगी। उनके लिये पंथनिरपेक्षता का अर्थ था–सभी धर्मों के प्रति समान आदरभाव। उनकी पंथनिरपेक्षता का मूलाधार थाः मानव व्यक्तित्व एवं नैतिकता में विश्वास, लोकतंत्र में आस्था, सत्य बोध के प्रति जिज्ञासा एवं अन्तःकरण की स्वतंत्रता।

नेहरू ने पंथनिरपेक्ष भारतीय संविधान का निर्माण कराया तथा पंथनिरपेक्ष राज्य की रचना करायी। वे पंथनिरपेक्षता को राष्ट्र की एकता का आधार मानते थे। फूट और साम्प्रदायिकता के कारण ही भारतवर्ष को अपमान, पराजय और विघटन का सामना करना पड़ा हैं। वे यह कहते थे कि इतिहास में समय–समय पर और लम्बी अवधियों तक घोर कलह में डूबे रहना और अलग–अलग रहने की भावना हमारे दुर्भाग्य का कारण रहा हैं जिसके परिणामस्वरूप भारतवर्ष की शक्ति आपसी लड़ाई–झगड़े में ही नष्ट हो गयी। इस देश में प्रत्येक क्षेत्र–कला, साहित्य, शिल्प, दर्शन आदि में अनेक महापुरूष हुए, किन्तु आपसी कलह ने सब कुछ नष्ट कर

दिया। इस कलह के अनेक कारण थे, किन्तु उनमें धर्म की भूमिका बड़ी महत्त्वपूर्ण रही हैं। धर्म की आड़ में ही भारतवर्ष का विभाजन हुआ। इस कलह–कारक तत्व को दूर रखने के लिए संविधान में पंथनिरपेक्षता को अपनाया गया।

पारस्परिक कलह और साम्प्रदायिकता को मिटाने का एकमात्र मार्ग यह हैं कि (1) हम अपने धार्मिक मतभेदों से ऊपर उठकर सभी धर्मों के प्रति आदर भाव रखना सीखें, (2) सभी धर्मों को राज्य समान एवं सम्मान के भाव से देखें (3) राज्य का अपना कोई धर्म न हो तथा वह किसी धर्म विशेष को दूसरे धर्मों की तुलना में वरीयता प्रदान नहीं करे, (4) प्रत्येक नागरिक को अन्तःकरण, पूजा, उपासना एवं धर्म प्रचार की स्वतंत्रता हो। (5) धर्म एवं राजनीति को दूर–दूर रखा जाय तथा (6) धर्म के नाम पर किसी को समाज की शान्ति भंग करने अथवा नैतिकता का उल्लंघन करने का अधिकार नहीं हो।

नेहरू के अनुसार देश ने राजनीतिक एकीकरण को तो प्राप्त कर लिया हैं, किन्तु भावनात्मक एकीकरण प्राप्त करना बाकी हैं। इसका अर्थ यह हैं कि सभी नागरिक विविधताओं के साथ अपने आपको भावात्मक रूप से एक समझें। भारतीय संविधान में इन्हीं विशेषताओं को स्थान प्रदान किया गया हैं। उनका मूल लक्ष्य साम्प्रदायिक सद्भाव एवं सहिष्णुता की स्थापना के द्वारा राष्ट्रीय एकता को बनाये रखना तथा विकसित करना हैं।

नेहरू की पंथनिरपेक्षता की धारणा उदार, व्यापक एवं विकासमान हैं। वे पंथनिरपेक्ष राज्य से पंथनिरपेक्ष समाज की ओर बढ़ना चाहते थे। इस दिशा में उन्हें काफी सफलता भी मिली। उनके बाद सभी राजनीतिक दलों, सरकारों एवं सर्वोच्च न्यायालय ने पंथनिरपेक्षता को भारतीय राजव्यवस्था का एक आधारभूत स्तम्भ मान लिया। पंथनिरपेक्षता राष्ट्रीय एकता का ही दूसरा नाम समझा जाने लगा हैं।

राष्ट्रवाद सम्बन्धी विचार–

नेहरू ने राष्ट्रवाद पर भी अपने विचार मुखर रूप से प्रस्तुत किए। एफ्रो–एशियाई देशों में साम्राज्यवादी शक्तियों के खिलाफ चले स्वतंत्रता आन्दोलनों के वे समर्थक थे।

राष्ट्रवाद को वे एक अन्तर्राष्ट्रीय वृहद परिप्रेक्ष्य में देखते थे। उन्होंने कहा था कि 'राष्ट्रवाद एक विचित्र वस्तु हैं, जो देश के इतिहास के किसी खास मुकाम पर तो जीवन, उन्नति, शक्ति और एकता प्रदान करती हैं, लेकिन साथ ही इसको सीमित कर देने की भी प्रवृति हैं, क्योंकि आदमी यह सोचने लगता हैं कि मेरा देश बाकी दुनिया से भिन्न हैं। इस तरह देखने का नजरिया बदलता जाता हैं और आदमी अपने ही संघर्षों और अच्छाइयों और बुराइयों के सोचने में फँसा रहता हैं और दूसरे विचार उसके सामने आते ही नहीं। नतीजा यह होता हैं कि वही राष्ट्रवाद जो किसी मानव की उन्नति का प्रतीक होता हैं, मानसिक विकास के अवरुद्ध होने का प्रतीक बन जाता हैं।'

राष्ट्रवाद के सम्बन्ध में उनके विचारों में स्पष्टता थी। वे कहा करते थे कि 'राष्ट्रीय मनोवृति बहुत ही जटिल होती हैं। हम में से ज्यादातर लोग यह समझते हैं कि हम बड़े न्यायी और निष्पक्ष हैं। हमेशा गलती दूसरा मुल्क ही करता हैं। हमारे दिमाग में कहीं न कहीं यह इत्मीनान छिपा रहता हैं कि हम वैसे नहीं हैं, जैसे दूसरे लोग हैं, हममें और दूसरों में जरूर फर्क हैं– यह दूसरी बात हैं कि शराफत की वजह से हम बराबर उस बात को न कहे।'

राष्ट्रीय एकता को एक नये परिप्रेक्ष्य में देखते हुए उन्होंने साम्प्रदायिकता पर भी गहरा प्रहार किया। वे इसे देश की एकता के लिये घातक मानते थे। उनका मत था कि 'साम्प्रदायिकता के साथ राष्ट्रवाद जीवित नहीं रह सकता। राष्ट्रवाद का मतलब हिन्दु राष्ट्रवाद या सिख राष्ट्रवाद कभी नहीं होता। ज्योंही आप हिन्दू,

सिख, मुसलमान की बात करते हैं, त्योंही आप हिन्दुस्तान के बारे में बात नहीं कर सकते। हरेक को अपने से यह सवाल पूछना होगा : मैं भारत को क्या बनाना चाहता हूँ–एक देश, एक राष्ट्र या कि दस–बीस–पच्चीस राष्ट्र–टुकड़ों–टुकड़ों में बँटा हुआ जिसमें कोई ताकत न हो और जरा से झटके से छोटे–छोटे टुकड़ों में बिखर जाये।'

अगर उन देशों में भी, जहाँ नये विचारों और अंतर्राष्ट्रीय ताकतो का जोरदार असर पड़ा हैं, राष्ट्रीयता की भावना इतनी आम हैं, तो हिन्दुस्तान के लोगों के दिमागों पर उनका ज्यादा असर होना लाजमी हैं। कभी–कभी हमें कहा जाता हैं कि हमारी राष्ट्रीयता इस बात की निशानी हैं कि हम लोग पिछड़े हुए लोग हैं और हमारे दिल संकुचित हैं। जो लोग हमसे इस तरह की बाते करते हैं, शायद उनका ख्याल हैं कि अगर हम अंग्रेजी सल्तनत के भीतर एक छोटे हिस्सेदार की हैसियत कुबुल कर लें, तो सच्ची अंतर्राष्ट्रीयता की भावना की जीत होगी। वे यह समझते दिखाई नहीं पड़ते कि इस खास किस्म की और महज नाम की अंतर्राष्ट्रीयता एक संकुचित अंग्रेजी राष्ट्रीयता का फैलाव भर हैं। फिर भी, राष्ट्रीयता की भावना चाहे कितनी भी गहरी हो, सच्ची अंतर्राष्ट्रीयता को कुबुल करने में, और संसार व्यापी संगठन और राष्ट्रीय संगठन के मातहत रहने के मामले में, हिन्दुस्तान बहुत सी और कौमों के मुकाबले में आगे बढ़ गया हैं।

नेहरू का अन्तर्राष्ट्रीयवाद–

नेहरू के वैचारिक दृष्टिकोण में अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप स्पष्ट दिखाई देता हैं। वे राष्ट्रीय उदारवाद तथा सामाजिक प्रगति के उन विचारों से अत्यधिक प्रभावित थे जिन्होंने एशिया तथा अफ्रीका के स्वतंत्रता आंदोलनों को प्रभावित किया था। नेहरू ने सन 1927 ई0 में कहा कि कांग्रेस को अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों से सम्बन्धित नीति बनानी चाहिए। उन्हीं के प्रयासों का परिणाम था कि कांग्रेस भारत के स्वतंत्रता संघर्ष को वैश्विक अंग मानने लगी। उनके अनुसार भारतीयों को आदर्श तथा नैतिकता को हर संघर्ष की पृष्ठभूमि में रखना चाहिए जैसा कि अमेरिकी राष्ट्रपति अब्राहिम लिंकन ने कहा था कि ये बिल्कुल भी उचित नहीं होगा कि आधा विश्व दास हो तथा आधा स्वतंत्र। यहाँ तक कि उनका राष्ट्रवाद भी मानवीयता से ओत–प्रोत था जिसे किसी देश की सीमाओं से नहीं बाँधा जा सकता। गाँधीजी कहा करते थे कि उनका अन्तर्राष्ट्रीयवाद का विचार राष्ट्रवाद जितना ही प्रभावी था। इतिहास और दर्शन के विशद ज्ञान के कारण वे विश्व की समस्याओं को आसानी से समझ पाते थे। उनका स्पष्ट मत था कि पूर्व और पश्चिम में मुख्य अंतर औद्योगिक विकास का हैं। इस औद्योगीकरण के कारण ही यूरोपीय महत्त्वाकांक्षाओं के सामने विश्व बहुत छोटा हो गया। नेहरू का अन्तर्राष्ट्रीयवाद लोकतंत्र और समाजवाद पर आधारित था। वे फ्रांसीसी क्रांति से अत्यधिक प्रभावित थे क्योंकि इस क्रांति ने समाज और धर्म की कई रूढ़ियो को चोट पहुँचायी थी। उनकी इसी वृहद सोच के कारण ही उनका मत था कि लोकतंत्र विज्ञान के साथ हाथ मिलाकर संकीर्ण धार्मिक कुरीतियों को समाप्त करेगा और साम्प्रदायिकता पर कुठाराघात करेगा। इसी संदर्भ में विचारकों ऑगस्ट कॉमटे तथा जेम्स मिल्स के विचारों से नेहरु प्रभावित प्रतीत होते हैं जो स्वतंत्रता तथा मानवीयता के पक्षधर थे। नेहरू के लेखों में कार्ल मार्क्स एवं एंगेल्स के विचारों का उल्लेख मिलता हैं। नेहरू समाजवादी विचारों से अत्यधिक प्रभावित थे। रूस द्वारा लम्बे समय तक अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में पालन किए गये शांति के मार्ग से भी वे प्रभावित थे। नेहरू ने यूरोप के साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद पर टिप्पणी करते हुए कहा कि पूँजीवाद के प्रभाव के कारण यूरोप एशिया पर पूर्णतया हावी हो गया। उनके अनुसार जैसे–जैसे उपनिवेशों के निवासियों के हितों को दबाया जायेगा वैसे–वैसे ही विदेशी शासन के प्रति असंतोष बढ़ता जायेगा। उन्होंने कई एशियाई देशों की यात्रा की और उनसे सम्पर्क बनाये रखा क्योंकि औपनिवेशीकरण के कारण ही अधिकांश देशों की समस्याएँ समान थी और उनसे मैत्री सम्बन्धों के कारण किसी भी घटना के समय वे संयुक्त रूप से प्रतिक्रिया जाहिर कर सकते थे। इन

एशियाई देशों की एकता के प्रयास सन 1947 ई0 के दिल्ली में हुए एफ्रो एशियन कांफ्रेस में देखने को मिलते हैं। इस अवसर पर नेहरू ने कहा कि औपनिवेशिक शासन ने हमारे आपसी सम्बन्धों को ठेस पहुँचाई हैं लेकिन अब हमारे चारों ओर खड़ी ये दीवार जल्द ही गिर जायेगी और हम प्राचीन मित्रों की तरह फिर मिलेंगे। उनका मत था कि एशिया को वैश्विक जगत में प्रमुख भूमिका निभानी चाहिए और इस परमाणु युग में एशियाई देश शांति स्थापना में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। जनवरी, 1949 में उन्होंने हॉलैण्ड से इंडोनेशिया की स्वतंत्रता का समर्थन करके यह जता दिया कि किसी भी गलत कदम के विरोध के लिये समस्त विश्व एक हो जायेगा। इस प्रकार ये स्पष्ट होता हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के समक्ष एवं अन्तर्राष्ट्रीयवाद में नेहरू का कोई सानी नहीं था।

नेहरु 1949 में एशियन कॉन्फ्रेन्स के अवसर पर इण्डोनेशिया के प्रतिनिधि के साथ

वह युद्ध की विभीषिका के सख्त खिलाफ थे। सन 1927 ई0 के कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन में उन्होंने शांति पर बल दिया और कहा कि हर युद्ध एक अन्तर्राष्ट्रीय त्रासदी हैं। क्योंकि यह अत्याचार और विध्वंस को जन्म देता हैं। वह यह मानते थे कि युद्ध राष्ट्र ही नहीं आम मनुष्य को भी प्रभावित करता हैं। उनका मत था कि तत्कालीन यूरोप घृणा और भय से भरा हुआ था। यूरोप का हर देश दूसरे देश से नफरत करता हैं और एक दूसरे को मिटाना चाहता हैं। यही कारण था कि नेहरु स्वतंत्रता, समानता और न्याय के सिद्धांतो की पुरजोर वकालत किया करते थे और यह चाहते थे कि अन्तर्राष्ट्रीय समाज में संघर्ष का स्थान सहयोग को लेना चाहिए।

नेहरू के अनुसार सभी देशों का निशस्त्रीकरण होना चाहिए। एक देश के द्वारा दूसरे देश को प्रताड़ित नहीं करना चाहिए। संसाधनों का उचित वितरण होना चाहिए। देशों और समूहों में कोई धार्मिक एवं प्रजातीय भेदभाव नहीं होना चाहिए।

अन्तर्राष्ट्रीयवाद के क्षेत्र में वैचारिक दृष्टि से और व्यवहार की दृष्टि से नेहरू के दो महत्त्वपूर्ण योगदान हैं, जिनकी विवेचना के बिना नेहरू का अन्तर्राष्ट्रवाद अधूरा रहेगा। इनमें प्रथम है–असंलग्नता की विदेश नीति और द्वितीय है–पंचशील के सिद्धांत, दोनों एक दूसरे से जुड़े हुए हैं।

असंलग्नता–

आजादी के पश्चात भारत ने स्वतंत्र विदेश नीति की राह को चुना। इसके मुख्य कर्णधार पण्डित जवाहरलाल नेहरू थे। वे आश्वस्त थे कि वैश्विक जगत में अपनी महान सभ्यता के कारण भारत निडरता से अपनी बात रख सकता हैं। यदि भारत अंतर्राष्ट्रीय पटल पर अपनी आवाज बुलंद नहीं करता तो औपनिवेशिक

गुलामी से हाल में हासिल मुक्ति अर्थहीन हो जायेगी। अपनी विशालता और महान परम्परा के कारण भारत को प्रभावी रूप से अपने विचारों को प्रकट करना आवश्यक होगा। इसलिए स्वतंत्र विदेश नीति तत्कालीन समय की एक आवश्यकता थी और उसी का अवलम्बन किया गया।

नेहरू ने इसी भावना के आधार पर असंलग्नता को एक संगठन का स्वरूप दिया। आंदोलन का परिप्रेक्ष्य द्वितीय विश्व युद्ध के बाद दो विरोधी गुटों में विश्व का विभाजन था, एक अमेरीका तथा दूसरा सोवियत संघ के नेतृत्व में। नेहरू की समझ के अनुसार एशिया तथा अफ्रीका के नवस्वतंत्र और गरीब देशों को बड़ी शक्तियों के सैनिक गुटों से फायदे के बजाए नुकसान ही होगा। वे महाशक्तियों के खेल में शतरंज के मोहरे भर बनकर रह जाएंगे। नवस्वतंत्र देशों की आवश्यकता हैं, गरीबी, निरक्षरता और बीमारी से लड़ना, और यह काम सैनिक गुटों में शामिल होने से नहीं हो सकता। इसके विपरीत, भारत और उसके समान अन्य देशों को विकास के लिए शांति एवं शांत वातावरण की आवश्यकता हैं। उनका हित शांति में हैं, न कि युद्ध या तनाव में। इसलिए, भारत न बगदाद पैक्ट, मनीला संधि, सीटो और सेंटों में शामिल हुआ और न ही उनका समर्थन किया। इन संधियों के जरिए पश्चिम तथा पूर्व एशियाई देशों को पश्चिमी शक्ति गुटों के साथ जोड़ा गया।

भारत सिर्फ निरपेक्ष या सैनिक गुटों से दूर ही नहीं रहा अपितु नेहरू ने तीव्रता से जॉन फॉस्टर डलेस द्वारा भारत पर "अनैतिक निष्पक्षता" के दोष का खंडन भी किया। असंलग्नता का अर्थ था, हर मुद्दे पर स्वतंत्र रूख अपनाना, सही या गलत की स्वयं पहचान करना और सही को अपनाना। उन्होंने कहा :–

''जहाँ तक फासिज्म, उपनिवेशवाद और रंगभेद की बुरी ताकतों या न्यूक्लियर बम और हमलों और दमन के सवाल हैं, हम जोरदार तरीके से और बिना किसी दुविधा के उनके खिलाफ हैं.....हम शीतयुद्ध और सैनिक गुटों से ही दूर रहते हैं। एशिया और अफ्रीका के नए राष्ट्रों को शीतयुद्ध की मशीन का पुर्जा बनने पर मजबूर करने का हम विरोध करते हैं। वैसे भी, हम हर उस चीज का विरोध करने के लिए आजाद हैं, जिसे हम दुनिया या अपने लिए गलत या हानिकारक समझते हैं, और जब कभी जरूरत पड़ती हैं, हम इस आजादी का इस्तेमाल करते हैं।''

असंलग्नता भारत तथा अन्य नव–स्वतंत्र राष्ट्रों की उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद से हासिल की गई आजादी बरकरार रखने के संघर्ष का प्रतीक रहा। आजाद होने वाले प्रारंभिक देशों में से एक होने के कारण भारत ने उचित ही पूर्व–उपनिवेशों को रास्ता दिखाया। सामूहिक रूप से इन देशों का बड़ा महत्त्व हैं। उदाहरण के लिए, संयुक्त राष्ट्र संघ में, जिसकी सदस्यता इन देशों के प्रवेश के कारण काफी बढ़ गई, एक देश–एक वोट की व्यवस्था ने गुटनिरपेक्ष समुदाय की, सोवियत संघ की मदद से पश्चिमी गुट का सामना करने में मदद की। इस प्रकार, असंलग्नता ने विश्व–संबंधों के जनवादीकरण में मदद की।

उपनिवेशवाद के खिलाफ संघर्ष में औपनिवेशिक एवं पूर्व–औपनिवेशिक देशों की सहायता भारत की विदेश नीति का मूल उद्देश्य हैं। इसमें गुट निरपेक्षता ने काफी मदद की। विदेश नीति को मजबूत बनाने के उद्देश्य को भी इससे सहायता मिली। नेहरू द्वारा युद्ध का जोरदार विरोध और हिरोशिमा की घटना के बाद परमाणु युद्ध खतरे के विरूद्ध संघर्ष के विचार सुविख्यात हैं। यह विश्वास अहिंसक संघर्ष तथा गांधीजी द्वारा प्रेरित हुए और उन्होंने आइंस्टीन तथा बर्टेंड रसेल जैसे महान बुद्धिजीवियों का समर्थन प्राप्त किया। नेहरू ने शांति तथा परमाणु एवं आम निःशस्त्रीकरण को दुनिया के सामने पेश करना भारत का उद्देश्य बनाया।

नेहरू ने अपने विचार तथा व्यवहार और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत के आचरण से यह स्पष्ट कर दिया कि असंलग्नता न तो अवसरवादी नीति हैं और न ही निष्क्रियता की नीति। नेहरू की असंलग्नता के कुछ प्रमुख लक्षण इस प्रकार हैं :–

1. असंलग्नता की प्रेरणा और मूलाधार–*विश्व शान्ति*–नेहरू ने युद्ध के विनाशकारी परिणामों को

देखा था और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के प्रसंग में उनका मूल लक्ष्य था, युद्ध और तनाव की सभी स्थितियों का विरोध। नेहरू ने अपनी दूरदर्शिता से इस बात को समझ लिया था कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के दो शक्ति गुटों में से भारत यदि किसी शक्ति गुट के साथ जुड़ गया, तो इससे अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में तनाव की शक्तियों को बल मिलेगा और भारत स्वंय अपने लिए तनाव और युद्ध के वातावरण को आमंन्त्रित करेगा। नेहरू मानवतावादी और विश्व–शान्ति के उपासक थे। उन्होंने सत्य रूप में यह सोचा कि भारत अपनी असंलग्नता के बल पर दो परस्पर विरोधी शक्ति गुटों को एक–दूसरे के समीप लाने का कार्य कर सकेगा और स्वयं अपने लिए शान्ति और तनाव से मुक्ति प्राप्त करेगा। व्यवहार के स्तर भारत ने असंलग्नता के बल पर कोरिया, साइप्रस, कांगो आदि विवादों में शान्ति स्थापित करने वाले देश की भूमिका निभाई। नेहरू की असंलग्नता का यदि कोई मूल और सर्वोपरि प्रेरक तत्त्व था, तो वह था, शान्ति, अपने देश के लिए और समस्त विश्व के लिए।

2. असंलग्नता : एक सकारात्मक नीति– नेहरू काल में असंलग्नता के लिए तटस्थता शब्द के प्रयोग का अधिक प्रचलन था लेकिन नेहरू ने एक से अधिक अवसरों पर इस बात को स्पष्ट कर दिया कि असंलग्नता अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अर्थ में तटस्थता की नीति या अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में नकारात्मकता की नीति नहीं हैं। सन 1949 ई0 की अमरीका यात्रा में अपने एक प्रसिद्ध वक्तव्य में उन्होंने कहा था, जब स्वतंत्रता के लिए संकट उपस्थित हो, न्याय को आघात पहुँचे और आक्रमण की घटना घटित हो तब हम न तो तटस्थ रह सकते हैं और न ही तटस्थ रहेंगे। नेहरू ने इस बात को स्पष्ट कर दिया कि असंलग्नता न तो अवसरवादी नीति है और न ही निषेधात्मक नीति। यह तो स्वतंत्रता, सत्य और न्याय का समर्थन करने और आक्रमणकारी का विरोध करने की सकारात्मक नीति हैं।

3. असंलग्नता : एक गतिशील नीति– असंलग्नता अपनी मूल धारणा में भी एक स्थिर नीति नहीं, वरन् राष्ट्रीय राजनीति और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार एक गतिशील नीति हैं। असंलग्नता साधन और साध्य दोनों हैं। बदलती हुई परिस्थितियों में विश्व के व्यापक हितों को दृष्टि में रखते हुए भारत के स्वंय के राष्ट्रीय हितों की पूर्ति करना इसका प्रमुख उद्देश्य हैं।

4. शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व असंलग्नता का आवश्यक लक्षण– असंलग्नता शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व के विचार पर आधारित हैं। शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व का आशय यह हैं कि विश्व के विभिन्न देशों में विचारधारा और हित सम्बन्धी भेद होने पर भी उनके बीच तनाव, संघर्ष या युद्ध अनिवार्य नहीं हैं। वे अपने समस्त भेदों और मतभेदों के बावजूद एक–दूसरे के साथ शान्तिपूर्वक रह सकते हैं और उन्हे ऐसा ही करना चाहिए।

नेहरू असंलग्नता की विदेश नीति के मुख्य शिल्पकार थे और असंलग्नता अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को पण्डित नेहरू का प्रमुख योगदान हैं। असंलग्नता का क्रान्तिकारी आदर्श एक आन्दोलन के रूप में परिणत होने लगा। यद्यपि असंलग्नता युद्धों को रोकने में पूर्णतया सफल नहीं हो सकी, किन्तु यह सत्य हैं कि इसने विश्व–शान्ति की महत्ता स्थापित की तथा एक सीमा तक विश्व–युद्ध को रोकने में सफल हुई। नेहरू की असंलग्नता ने तीसरी दुनिया के देशों में नैतिक शक्ति, चेतना तथा आत्मसम्मान विकसित करने में प्रमुख भूमिका अदा की।

पंचशील– नेहरू सोचते थे कि परस्पर विरोधी व्यवस्थाओं के बीच संघर्ष और युद्ध की स्थिति स्वाभाविक या अनिवार्य नहीं हैं। वे एक–दूसरे के साथ– शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व [Peaceful Co-existence] की स्थिति को अपना सकते हैं और समस्त मानव जाति को विनाश से बचाने के लिए इस प्रकार की स्थिति को अपनाना आवश्यक हैं।

नेहरू ने लगातार बल दिया कि विभिन्न विचारधाराओं और व्यवस्थाओं वाले देशों के बीच **शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व** एक आवश्यकता हैं। उनका विश्वास था कि सच्चाई पर किसी का एकाधिकार नहीं था और बहुलवाद जीवन की सच्चाई थी। उन्होंने कहा कि मानव कल्याण तथा विश्वशांति के आदर्शों की स्थापना के लिए विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था वाले देशों में पारस्परिक सहयोग आवश्यक हैं। इसके लिए जिन सिद्धांतों का अवलम्बन किया गया वे पाँच आधारभूत सिद्धांत, **पंचशील** कहलाते हैं। इसके जरिए विभिन्न देशों के बीच संबंधों का नियमन किया जा सकता था।

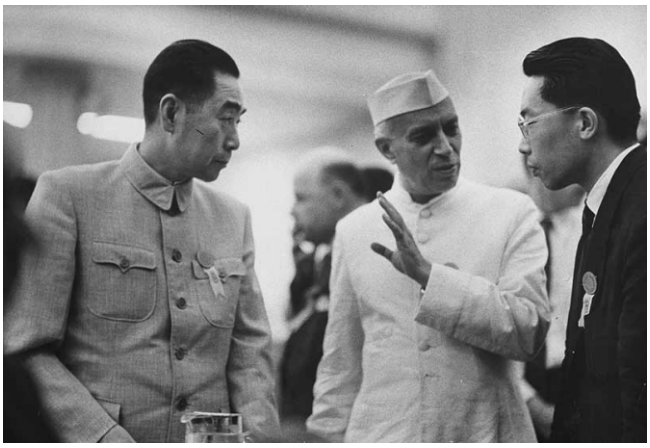

पंचशील के पाँच सिद्धांत निम्नानुसार हैं–

1. सभी देशों द्वारा अन्य देशों की क्षेत्रीय अखंडता और प्रभुसत्ता का सम्मान करना
2. दूसरे देश के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना
3. दूसरे देश पर आक्रमण न करना।
4. परस्पर सहयोग एवं लाभ को बढावा देना।
5. शांतिपूर्ण सह अस्तित्व की नीति का पालन करना।

सारांश में, स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री होने के नाते नेहरू के सामने अपार चुनौतियाँ थीं। इसके बावजूद किसी भी ऐतिहासिक मानदंड से उनकी उपलब्धियाँ विशालतम अनुपात में थी। सर्वोपरि, उन्होंने कुछ मूल्यों, दृष्टिकोणों, आदर्शों, लक्ष्यों और नजरिए को देश हित में पहचाना। उन्होंने इन्हे भारतीय जनता की सांस्कृतिक चेतना का अंग बना दिया।

नेहरू ने भारतीय राष्ट्र को सुदृढ़ किया, नागरिक अधिकार और संसदीय लोकतंत्र पर आधारित राजनीतिक व्यवस्था की नींव रखी– धर्मनिरपेक्षता, सामाजिक न्याय और सामाजिक उग्र सुधारवाद को राष्ट्रीय राजनीतिक प्रणाली का मूलाधार बनाया, असंलग्नता, स्वतंत्रता, अंतर्राष्ट्रीय मामलों में आत्सम्मान, भारत के आंतरिक एवं बाहरी हितों को प्रोत्साहन, विश्व शांति और उपनिवेशवाद–विरोध को अपनी विदेश नीति का आधार बनाया; नियोजन आरंभ किया, शक्तिशाली सार्वजनिक क्षेत्र की आधारशिला रखी, भारत को आत्मनिर्भर स्वतंत्र अर्थव्यवस्था के रास्ते पर खड़ा किया तथा वैज्ञानिक मनोवृत्ति को आगे बढ़ाया। उन्होंने जनता को एक समाजवादी आदर्श प्रदान किया तथा समानता पर आधारित एक व्यापक समाजवादी समाज के लक्ष्य को लोकप्रिय बनाया। अस्पृश्यता का कानूनी अंत और हिंदू संहिता विधेयक स्वीकृत करवाकर उन्होंने दो ऐतिहासिक कदम उठाए। नेहरु ने अपने राजनीतिक व्यवहार में हमेशा सज्जनता, उदारता और सौम्यता से कार्य किया; सार्वजनिक जीवन में व्यवहार का जो उच्च मानदंड उन्होंने कायम किया, वह बाद के राजनीतिक नेताओं के लिए कसौटी साबित हुआ। लोकतंत्र को स्थापित करने में नेहरू की सफलता सन 1964 ई. में उनकी और सन 1966 ई. में लालबहादुर शास्त्री की मृत्यु के बाद सरकार और पार्टी के नेतृत्व में हुए गतिरोध विहीन सत्ता हस्तांतरण से साबित होती हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भारत का पहला परमाणु रिएक्टर कब स्थापित किया गया ?

   (अ) 1954 (ब) 1955

   (स) 1956 (द) 1957

2. बलवंत राय मेहता की सिफारिश पर किस व्यवस्था को स्थापित किया गया ?

   (अ) पंचायती राज (ब) नगरीय प्रशासन

   (स) आणविक अनुसंधान (द) अंतरिक्ष अनुसंधान

3. योजना आयोग की स्थापना किस सन में हुई ?

   (अ) 1949 (ब) 1950

   (स) 1951 (द) 1952

4. 'विदर इंडिया' (Whither India) पुस्तक किसके द्वारा लिखी गई हैं

   (अ) दादाभाई नौरोजी (ब) जवाहर लाल नेहरू

   (स) आर. सी. दत्त (द) गोपाल कृष्ण गोखले

5. पंचशील के सिद्धांत को समझाइये।